

भारतीय ज्ञान परम्परा के मूलश्रोत-संस्कार

गायत्री किशोर¹

¹एसो. प्रोफेसर, अध्यक्ष- संस्कृत एवं वैदिक अध्ययन विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुञ्ज-शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

सारांश. संस्करणं सम्यक् करणं वा संस्कारः । संस्कार परम्परा हमारी महान् आध्यात्मिक विरासत है। इसे जीवन जीने की कला का प्रशिक्षण कहा जा सकता है। हमारे पूर्वज ऋषियों ने जीवन विद्या पर गहन शोध करके यह तथ्य उजागर किया कि मानव जीवन जीवात्मा की विराट् यात्रा का एक पड़ाव मात्र है। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण मोड़ या चौराहे हैं, जिन पर मार्गदर्शन के अभाव में भटकाव की पूरी-पूरी सम्भावना रहती है। ऐसे प्रत्येक मोड़ पर संस्कार के रूप में एक मार्गदर्शन का सूचनापट लगाकर ऋषियों ने सुसंस्कृत समाज की संरचना का सफल प्रयोग किया है। संस्कारों की संख्या एवं नाम के सम्बन्ध में आचार्यों में पर्याप्त मतभेद हैं। जहाँ गौतम ऋषि ने इनकी संख्या 40 तथा अङ्गिरा ने 25 लिखी हैं। वहीं व्यास, मनु आदि अधिकांश मनीषियों ने 16 की संख्या स्वीकार की है। षोडश संस्कार की मान्यता उसी का परिणाम है। कुछ आचार्यों ने 12 एवं 10 की संख्या भी मानी है। वर्तमान समय में लोगों की मनःस्थिति एवं परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने निम्नलिखित 12 संस्कारों को व्यापक अभियान के रूप में सम्पन्न कराये जाने की बात पर विशेष जोर दिया है। शेष संस्कारों के महत्त्वपूर्ण कर्मकाण्डों एवं प्रेरणाओं को इन्हीं के साथ जोड़ दिया है। ये संस्कार हैं- पुंसवन, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण (मुण्डन), उपनयन (यज्ञोपवीत), विवाह, वानप्रस्थ, अन्त्येष्टि, मरणोत्तर, जन्मदिवस एवं विवाह-दिवस संस्कार। यज्ञीय वातावरण में किया गया मार्गदर्शन व्यक्ति की अन्तः चेतना को प्रभावित करता है। इस प्रकार व्यक्ति एवं परिवार के प्रशिक्षण का आध्यात्मिक प्रयोग पूर्ण होता है। जिस प्रकार खदान से निकली हुई अनगढ़ व सामान्य ताँबा, लोहा जैसी धातुओं को बड़े कारखाने (स्टील प्लांट) में संस्कारित करके सुघड़ एवं उपयोगी बनाया जाता है, जैसे लोहा जैसी सामान्य धातु के टुकड़े को आयुर्वेद के आचार्यों द्वारा गजपुट, ताप, खरल आदि क्रियाओं द्वारा लौह भस्म के रूप में उपयोगी रस-रसायन बना दिया जाता है। उसी प्रकार हमारे ऋषियों ने संस्कार प्रक्रिया के माध्यम से मनुष्य के आत्मिक एवं भौतिक विकास का मार्ग प्रशस्त करके मानव को मानव, महामानव, देवमानव स्तर तक विकसित किया है। इस प्रकार पृथ्वी पर स्वर्ग की संकल्पना को साकार किया है। वर्तमान समय में पुनः वहीं होने जा रहा है। संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा दोषपनयनेन वा । - सायण भाष्य संस्कार परम्परा अर्थात् सत्प्रवृत्ति संवर्धन दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन। वर्तमान समय की यही माँग है, तभी मनुष्य में देवत्व की स्थापना एवं धरती पर स्वर्गीय परिस्थितियाँ (खुशहाली) लायी जा सकती है।

कूटशब्द. संस्कार (Sanskara); षोडश संस्कार (Sixteen Sacraments); भारतीय ज्ञान परम्परा (Indian Knowledge Tradition); यज्ञ (Yajna); आध्यात्मिक विकास (Spiritual Development)

*CORRESPONDENCE

देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुञ्ज-
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) +91
9258369855, +91 9719004531
Email:

gayatrikishore.trivedi@dsv.ac.in

PUBLISHED BY

Dev Sanskriti Vishwavidyalaya
Gayatrikunj-Shantikunj,
Haridwar, India

OPEN ACCESS

Copyright © 2026 किशोर
Licensed under a Creative
Commons Attribution 4.0
International License



भूमिका

संस्कार शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ सम् पूर्वक कृञ् धातु से घञ् प्रत्यय होकर संस्कार शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है- संस्करणं सम्यक् करणं वा संस्कारः अर्थात् परिष्कार करना अथवा भली प्रकार निर्माण करना ही 'संस्कार' कहता है।

'संस्कार-प्रकाश' में संस्कार शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा गया है-

समुपसर्गात् कृञो घञि निष्पन्नोऽयं संस्कार शब्दः स्वयमेव स्वलक्षणमप्यभिधत्ते । तद्यथा-आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो हीनाङ्गपूर्वको दोषापमार्जनकरो ऽतिशयाधायकश्च विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेष एवं 'संस्कार' इत्युच्यते । [1]

सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय होकर निष्पन्न संस्कार शब्द स्वयमेव अपना लक्षण भी प्रकट कर देता है। यथा-शरीर और आत्मा में कमी या त्रुटि को पूर्ण करते हुए, दोषों का परिमार्जन करते हुए, अतिशय गुणों का आधान करने वाले शास्त्र विहित विधि (कर्म-काण्ड) से समुद्भूत अतिशय विशेष को ही 'संस्कार' कहा जाता है। संस्कार शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता रहा है। मेदिनी कोश के अनुसार इसका अर्थ है- क. प्रतियत्न ख. अनुभव ग. मानस कर्म। सर्वप्रथम ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग हुआ, जिसका अर्थ वहाँ धर्म (बरतन) की शुद्धता-पवित्रता, लिया गया। तदनन्तर शतपथ ब्राह्मण, छन्दोग्य उपनिषद् में इस शब्द का अर्थ निर्मलता-स्वच्छता से लगाया गया। जैमिनीकृत मीमांसा सूत्र में इसका प्रयोग 'चमकाने' के अर्थ में हुआ। तब से अब तक यह शब्द अपने अर्थ और स्वरूप को अत्यधिक सारगर्भित और वैज्ञानिकता से अभिपूरित कर चुका है।

संस्कार की परिभाषाएँ, भेद एवं प्रयोजन

मीमांसा दर्शन का भाष्य करते हुए शबरमुनि लिखते हैं-

'संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्य-चिदर्थस्य'। [2] अर्थात् संस्कार वह प्रक्रिया है, जिसके होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी कार्य के योग्य हो जाता है। प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट कृत तन्त्र वार्तिक में कहा गया है-

'योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते'। [3]

अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं।

महर्षि हारीत ने लिखा है-

'द्विविधो हि संस्कारो ब्राह्मो देवश्च। गर्भादानादिस्मार्तो ब्राह्मः पाक यज्ञ सौम्याश्च देवः'। [4]

अर्थात् संस्कार दो प्रकार के होते हैं- (1) ब्राह्म संस्कार और (2) देव संस्कार। गर्भादानादि संस्कार, जो स्मृति ग्रन्थों द्वारा विहित हैं, ब्राह्म संस्कार कहलाते हैं और पाकयज्ञ, हवियज्ञ, सोम यागादि देव संस्कार कहे जाते हैं। इसी सन्दर्भ में हारीत मुनि आगे लिखते हैं-

'ब्राह्मेण संस्कारेण ऋषीणां सलोकतां समानतां सायुज्यतां वा गच्छति इति ।

दैवेन संस्कारेण देवानां समानतां सालोक्यतां सायुज्यतां सारूप्यतां वा गच्छति ॥' [5]

अर्थात् 'ब्राह्म' संस्कार से मानव में ब्राह्मणोचित-ऋषिकल्प गुणों, उनकी समानता (समान सम्मान)

उनकी समीपता अथवा उनसे युक्त होने की योग्यता का विकास होता है। 'दैव' संस्कार से देवों के समान गुणों, उनकी समीपता, उनसे युक्त होने की योग्यता अथवा उनके सदृश रूप, गुण आदि की योग्यता प्राप्त होती है।

आज जिन संस्कारों का मानव समाज में प्रचलन है, उनकी संख्या प्रमुखतः सोलह मानी गयी है जैसा कि शास्त्रकार जातूकर्ण्य ने लिखा है-

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च। नामक्रिया निष्क्रमोऽन्नप्राशनं वपनक्रिया ॥ कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भः क्रियाविधिः । केशान्तः स्नानमुद्राहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ त्रेताग्निसंग्रहश्चैव संस्काराः षोडश-स्मृताः । "

अर्थात् गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, वेदारम्भ, विद्यारम्भ; उपनयन, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, अन्त्येष्टि तथा मरणोत्तर ये सोलह संस्कार होते हैं।

आयुर्वेदिक रसायन बनाने की अवधि में ओषधियों पर कितने ही संस्कार डाले जाते हैं। कई बार कई प्रकार के रसों में उन्हें खरल किया जाता है और कई बार उन्हें गजपुट द्वारा अग्नि में जलाया-तपाया जाता है, तब कहीं वह रसायन ठीक तरह तैयार होता है और साधारण-सी राँगा, जस्ता, ताँबा, लोहा, अभ्रक जैसी कम महत्व की धातु चमत्कारिक शक्ति-सम्पन्न बन जाती है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य को भी समय-समय पर विभिन्न आध्यात्मिक उपचारों द्वारा सुसंस्कृत बनाने की महत्वपूर्ण पद्धति भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने विकसित की थी। उसका परिपूर्ण लाभ देशवासियों ने हजारों लाखों वर्षों से उठाया है। यों किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने के लिए शिक्षा, सत्संग, वातावरण, परिस्थिति, सूझ-बूझ आदि अनेक बातों की आवश्यकता होती है। सामान्यतः ऐसे ही माध्यमों से लोगों की मनोभूमि विकसित होती है। इसके अतिरिक्त भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने मनुष्य की अन्तः भूमि को श्रेष्ठता की दिशा में विकसित करने के लिए कुछ ऐसे सूक्ष्म उपचारों का भी आविष्कार किया है, जिनका प्रभाव शरीर तथा मन पर ही नहीं सूक्ष्म अन्तःकरण पर भी पड़ता है और उसके प्रभाव से मनुष्य को गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से समुन्नत स्तर की ओर उठने में सहायता प्राप्त होती है।

इस आध्यात्मिक उपचार का नाम संस्कार है। भारतीय धर्म के अनुसार संस्कार १६ प्रकार के हैं, जिन्हें 'षोडश संस्कार' के नाम से जाना जाता है। माता के गर्भ में आने के दिन से लेकर मृत्यु तक की अवधि में समय-समय पर प्रत्येक भारतीय धर्मावलम्बी को १६ बार संस्कारित करके एक प्रकार का आध्यात्मिक रसायन बनाया जाता था। प्राचीनकाल में प्रत्येक भारतीय इसी प्रकार का एक जीता जागता रसायन होता था। मानव देह में रहते हुए भी उसकी आत्मा देवताओं के स्तर की बनती थी। यहाँ के निवासी 'भूसुर' अर्थात् पृथ्वी के देवता माने जाते थे। उनके निवास की यह पुण्य भूमि भारत माता 'स्वर्गा-दपि गरीयसी' समझी जाती थी, संस्कारवान् व्यक्तियों को तथा उनके निवास स्थान को ऐसा गौरव प्राप्त होना उचित भी था।

हमारी प्राचीन महत्ता एवं गौरव गरिमा को गगनचुम्बी बनाने में जिन अनेक सत्प्रवृत्तियों को श्रेय मिला था, उसमें एक बहुत बड़ा कारण यहाँ की संस्कार पद्धति को भी माना जा सकता है। यह पद्धति सूक्ष्म अध्यात्म विज्ञान की अतीव प्रेरणाप्रद प्रक्रिया पर अवलम्बित है। वेद मंत्रों के सस्वर उच्चारण से उत्पन्न होने वाली ध्वनि तरंगें, यज्ञीय ऊष्मा के साथ सम्बद्ध होकर अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करती हैं, जो भी व्यक्ति इस वातावरण में एकत्र होते हैं अथवा जिनके लिए भी उस पुण्य प्रक्रिया का प्रयोग होता है, वे उससे प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है, जिससे व्यक्तियों के गुण, कर्म, स्वभाव आदि की अनेक विशेषताएँ प्रस्फुटित होती हैं। संस्कारों की प्रक्रिया एक ऐसी आध्यात्मिक उपचार पद्धति है, जिसका परिणाम व्यर्थ नहीं जाने पाता। व्यक्तित्व के विकास में इन उपचारों से आश्चर्यजनक सहायता मिलती देखी जाती है।

संस्कारों में जो विधि-विधान हैं, उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव मनु-

ष्य को सन्मार्गगामी होने के उपयुक्त बनाता है। संस्कार के मन्त्रों में अनेक ऐसी दिशाएँ भरी पड़ी हैं, जो उन परिस्थितियों के लिए प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी हैं। पुंसवन संस्कार के समय उच्चारण किए जाने वाले मन्त्रों में गर्भवती के रहन-सहन, आहार-विहार सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षण मौजूद हैं।

इस प्रकार विवाह में दाम्पत्य जीवन की, अन्नप्राशन में भोजन छाजन की, वानप्रस्थ में सेवापरायण जीवन की आवश्यक शिक्षाएँ प्रचुर मात्रा में भरी पड़ी हैं। उन्हें यदि कोई प्रभावशाली वक्ता, ठीक ढंग से समझाकर संस्कार के समय उपस्थित लोगों को बता सके, तो जिनका संस्कार से सम्बन्ध है, उन्हीं को नहीं; वरन् सुनने वाले दूसरे लोगों को भी इस सन्देश से आवश्यक कर्तव्यों का ज्ञान हो सकता है और वे भी जीवन को उचित दिशा में ढालने के लिए तत्पर हो सकते हैं।

परिवार को संस्कारवान् बनाने की, कौटुम्बिक जीवन को सुविकसित बनाने की एक मनोवैज्ञानिक एवं धर्मानुमोदित प्रक्रिया को संस्कार पद्धति कहा जाता है। हर्षोत्सव के वातावरण में देवताओं की साक्षी, अग्निदेव का सान्निध्य, धर्म भावनाओं से ओत-प्रोत मनोभूमि, स्वजन सम्बन्धियों की उपस्थिति, पुरोहित द्वारा कराया हुआ धर्म कृत्य, यह सब मिल-जुलकर संस्कार से सम्बन्धित व्यक्तियों को एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था में पहुँचा देते हैं और उस समय जो प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं जो प्रक्रियाएँ कराई जाती हैं, वे अपना गहरा प्रभाव सूक्ष्म मन पर छोड़ती हैं और वह प्रभाव बहुधा इतना गहरा एवं परिपक्व होता है कि उसकी छाप अमिट नहीं, तो दीर्घकाल तक अवश्य बनी रहती है।

एक शिक्षा सामान्य ढङ्ग से रास्ता चलते, उथले 'मूड' में कह दी जाए, तो उसका प्रभाव दूसरा होगा और उसी बात को धर्म सम्मिश्रित गम्भीर वातावरण में कहा जाए, तो उसका प्रभाव अन्य प्रकार का होता है। मजाक में किसी की झूठी कसम खाई जा सकती है; पर गङ्गाजी में खड़े होकर या गङ्गाजली हाथ में लेकर गम्भीरतापूर्वक कसम खाना कुछ दूसरा ही अर्थ रखता है। व्यभिचारी लोग अपनी प्रेमिका को लम्बे चौड़े आश्वासन देते रहते हैं, उनकी कोई कीमत नहीं होती; पर विवाह संस्कार के अवसर पर सात भाँवरें फिरते हुए जो वचन दिये जाते हैं, उनका वर-वधू दोनों पर ऐसा अमिट प्रभाव पड़ता है कि वे आजीवन परस्पर एक दूसरे से बँधा हुआ ही अनुभव करते रहते हैं। यों ध्यान से देखा जाए, तो उन भाँवरों के फिरने का कोई विशेष मूल्य दिखाई नहीं पड़ता। भाँवर फिरना, गाँठ जोड़ना, सात कदम साथ-साथ चलना-इन सब बातों में साधारण से खेलकूद में होने वाले श्रम से अधिक क्या कोई विशेषता दिखाई पड़ती है? इनमें तो और भी कम श्रम लगता है; किन्तु जिस भावना के साथ, जिस वातावरण में विवाह विधान की छोटी-छोटी विधियाँ पूरी की जाती हैं, उनकी ऐसी छाप पड़ती है कि उससे जीवनभर इनकार नहीं किया जा सकता।

यही मनोविज्ञान सम्मत धर्म विधान अन्य सब संस्कारों के अवसर पर काम करता है। उनके द्वारा अन्तर्मन पर ऐसी छाप डाली जाती है, जो किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत, सुविकसित, सौजन्ययुक्त एवं कर्तव्यपरायण बनाने में समर्थ हो सके। ऋषियों ने अपनी आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक शोधों के आधार पर इस पुण्य प्रक्रिया का निर्माण किया है। वह जितनी प्रभावशाली पूर्वकाल में थी, उतनी ही आज भी है, यदि उसे ठीक ढङ्ग से, उचित व्यवस्था के साथ, उपयुक्त वातावरण में सम्पन्न किया जाए तो।

संस्कार आयोजन के अन्तर्गत दुहरी प्रक्रिया चलती है। एक तो जिसका संस्कार है, उसके अन्तःकरण में दिव्य वातावरण में वांछित श्रेष्ठ संस्कारों का बीजारोपण किया जाता है। साथ ही उन बीजों को विकसित और फलित करने के मुख्य सूत्रों पर सबका ध्यान खींचने

तथा आस्था जमाने का क्रम भी चलता है। बीजारोपण शिशुओं से लेकर वयस्कों तक में समान रूप से होता है; परन्तु उसे फलित करने के सूत्रों को विकसित मस्तिष्क ही समझ और ग्रहण करते हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं को जीवन्त बनाये रखकर ही संस्कारों को प्रभावशाली बनाया जाता है। कर्मकाण्ड संचालकों को व्याख्याएँ, टिप्पणियाँ तथा समग्र प्रवाह इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर ही बनाना चाहिए। इसके विपरीत शिक्षण-प्रेरणा तथा क्रिया और भावना दोनों को ही संतुलित ढंग से उभारा जाना चाहिए।

संस्कार परम्परा हमारी महान् आध्यात्मिक विरासत है। इसे जीवन जीने की कला का प्रशिक्षण कहा जा सकता है। हमारे पूर्वज ऋषियों ने जीवन विद्या पर गहन शोध करके यह तथ्य उजागर किया कि मानव जीवन जीवात्मा की विराट् यात्रा का एक पड़ाव मात्र है। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण मोड़ या चौराहे हैं, जिन पर मार्गदर्शन के अभाव में भटकाव की पूरी-पूरी सम्भावना रहती है। ऐसे प्रत्येक मोड़ पर संस्कार के रूप में एक मार्गदर्शन का सूचनापट लगाकर ऋषियों ने सुसंस्कृत समाज की संरचना का सफल प्रयोग किया है।

संस्कारों की संख्या एवं नाम के सम्बन्ध में आचार्यों में पर्याप्त मतभेद हैं। जहाँ गौतम ऋषि ने इनकी संख्या 40 तथा अङ्गिरा ने 25 लिखी हैं। वहीं व्यास, मनु आदि अधिकांश मनीषियों ने 16 की संख्या स्वीकार की है। [6][7] षोडश संस्कार की मान्यता उसी का परिणाम है। कुछ आचार्यों ने 12 एवं 10 की संख्या भी मानी है। वर्तमान समय में लोगों की मनःस्थिति एवं परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने निम्नलिखित 12 संस्कारों को व्यापक अभियान के रूप में सम्पन्न कराये जाने की बात पर विशेष जोर दिया है। शेष संस्कारों के महत्त्वपूर्ण कर्मकाण्डों एवं प्रेरणाओं को इन्हीं के साथ जोड़ दिया है। ये संस्कार हैं- पुंसवन, नामकरण, अन्न-प्राशन, चूड़ाकरण (मुण्डन), उपनयन (यज्ञोपवीत), विवाह, वानप्रस्थ, अन्त्येष्टि, मरणोत्तर, जन्मदिवस एवं विवाह-दिवस संस्कार। उपर्युक्त इन बारह संस्कारों को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया जा रहा है-

पुंसवन-संस्कार

प्रस्तावना

मानव जीवन की पूर्णता हेतु संस्कार आवश्यक है।

संस्कार की श्रेणियाँ क. प्राग्जन्म, ख. शैशव, ग. विद्यापरक, घ. अन्त्यकालिक।

पुंसवन- प्राग्जन्म संस्कार।

काल एवं महत्ता

आने वाली जीवात्मा का संस्कार। अभिमन्यु, प्रह्लाद आदि ने इसी समय श्रेष्ठ संस्कार ग्रहण किया।

पुंसवन के प्रमुख घटक (गर्भाधान-सीमन्तोन्नयन का समावेश)

औषधि अवघ्राण (वट-विशालता, गिलोय जीवट, पीपल-आध्यात्मिकता)

गर्भपूजन - आने वाली जीवात्मा का सम्मान। घर का वातावरण आस्तिक बनाना, स्वयं गर्भिणी द्वारा भी ध्यान-

उपासना आदि करना।

आश्वात्सना गर्भस्थ शिशु को स्वयं गर्भिणी, उनका पति तथा परिवारीजनों द्वारा उत्तम वातावरण आदि का आश्वासन प्रदान करना।

चरु प्रदान रखे। खीर की सात्विकता आदि गुणों से जीवात्मा को पोषण, गर्भिणी आगे भी अपने खान-पान का ध्यान

उपसंहार

शिशु में जन्म से पूर्व इन संस्कारों से श्रेष्ठता का समावेश। पुंसवन संस्कार की परिभाषा - पुमान् सूयते इति पुंसवनम् । पुरुषार्थी सन्तान की कामना से किया जाने वाला पुंसवन संस्कार (जन्म से पूर्व) प्राग्जन्म संस्कारों (गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन) में प्रमुख है। वर्तमान समय की मनः स्थिति एवं परिस्थितियों को देखते हुए पूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने तीनों संस्कारों की महत्वपूर्ण प्रेरणाओं एवं कर्मकाण्डों को पुंसवन संस्कार के साथ ही जोड़ दिया है।

गर्भस्थ शिशु न केवल माँ के आहार से अपना आहार ग्रहण करता है, बल्कि विचारों एवं भावनाओं को भी माँ के माध्यम से ही प्राप्त करता है। इसीलिए गर्भवती माँ के आहार-विहार तथा आचार-विचार का ही नहीं, अपितु उसके प्रति परिवार जनों के व्यवहार का भी समुचित मार्गदर्शन इस संस्कार के साथ प्रदान किया जाता है।

माँ अपने संकल्प के अनुरूप ही बच्चे का निर्माण करती है। पुंसवन संस्कार के माध्यम से उसे इस सामर्थ्य का बोध कराते हुए समाज में नारी के सम्मानजनक रूप को प्रतिष्ठित किया जा रहा है। इस प्रकार यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। की उक्ति पुनः सार्थक सिद्ध होने जा रही है।

गर्भ-निहित शिशु चेतना, का करने संस्कार। अभिमंत्रित चरु पुंसवन है औषधि उपचार ॥ शिशु संस्कारित गर्भ में बढ़ता है अविराम। संस्कारित करना उसे, है घर भर का काम ॥

नामकरण संस्कार

प्रस्तावना

शिशु जन्म का प्रथम संस्कार। जातकर्म संस्कार का समावेश भी इसी में है।

काल एवं महत्ता

जन्म से 10 या 12 दिन अथवा एक माह के अन्दर-अन्दर नामकरण संस्कार को कर लेना चाहिए।

व्यवहार का प्रमुख हेतु - नाम। यथा नाम तथा गुण का सिद्धान्त नाम का बहुत कुछ प्रभाव बालक के गुण-कर्म-स्वभाव पर पड़ता है। यथा-ध्रुव, राम, भरत, शत्रुघ्न आदि।

नामकरण के प्रमुख घटक का भाव है। मेखला बन्धन लिए कमर कसके तैयार रहना। सूर्य नमस्कार- सूर्यवत् गतिशीलता, तेजस्विता का गुण बढ़े। भूमि पूजन-मातृभूमि का सम्मान। स्पर्शन- स्वयं के प्रति कर्त्तव्यों का बोध कराना। नाम घोषणा- बच्चे का नाम गुण-वाचक, महापुरुषों, प्राकृतिक विभूतियों के आधार पर उसके प्रति प्रेरित करना। परस्पर परिवर्तन - माता-पिता द्वारा अन्यो की गोदी में देना, सबकी जिम्मेदारी। बाल प्रबोधन- अचेतन मस्तिष्क में प्रेरणा भरना, मद्दालसा की तरह। अभिषेक पूर्व योनियों के कुसंस्कार की छाया को हटाना ही अभिषेक करने चुस्ती-फुर्ती के लिए कमर में मेखला बाँधते हैं। मधु प्राशन- मृदु भाषिता के

'पिता माता च दधतुर्दग्धे' सर्वप्रथम माता-पिता द्वारा प्रदान किया गया सम्बोधन-नामकरण । जन्म के बाद सम्पन्न होने वाले क्रमशः तीन संस्कारों- जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण के महत्वपूर्ण कर्मकाण्डों एवं उनकी प्रेरणाओं का समावेश किया गया है। शिशु के अन्दर मौलिक कल्याणकारी प्रवृत्तियों एवं आकांक्षाओं की स्थापना करना। कुसंस्कारों के निवारण तथा सुसंस्कारों के विकास की पृष्ठभूमि का निर्माण करना। अभिभावकों द्वारा शिशु को जन्म देने के साथ उन्हें श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न बनाने का कर्त्तव्यबोध यथा नाम तथा गुणे। शिशु में नाम के अनुरूप गुणों के विकास को मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का

शुभारम्भ करना। दिव्य द्रष्टा कुलगुरु अथवा पुरोहित द्वारा शिशु के भविष्य को देखकर भावी गुणों के अनुसार नाम निर्धारण की प्राचीन परम्परा जैसे वशिष्ठ द्वारा राम, भरत, लक्ष्मण आदि का नामकरण। गुण कर्म स्वभाव के नाम परिवर्तन व निर्धारण की सहज सामाजिक परम्परा जैसे सुयोधन का दुर्योधन, रावण अर्थात् रावयति भीषयति सर्वान् इति। चतुर्विधानि नामानि धार्याणि। चार प्रकार के नामों का विधान-देवता के नाम, मास के नाम, नक्षत्र के नाम, व्यवहार आदि के नाम रखने चाहिए।

नामकरण संस्कार से है शिशु की पहचान। नाम प्रेरणा दे सके, इसका रखिये ध्यान ॥ रहा अजामिल पापमय नारायण था पुत्र। नाम पुकारा पुत्र का पिता हो गया मुक्त ॥

अन्नप्राशन-संस्कार

प्रस्तावना

शैशवकाल का दूसरा संस्कार है अन्नप्राशन। इसमें पेय पदार्थ के बाद अन्न की आवश्यकता महसूस होती है। अन्न का शरीर पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। अन्नो वै ब्रह्म, अन्नं न निन्द्यात्... । [8]

यादृशं भक्षयेदन्नं तादृशी तस्य सन्ततिः । दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं हि प्रसूयते ॥ [9]

काल (अवधि)

6 माह के उपरान्त अथवा दाँत निकल आने पर ही कुछ ठोस पदार्थ खिलाये जायें।

प्रमुख क्रम

पात्र पूजन- (पात्रता विकसित करने का शिक्षण, साध्य के साथ साधन भी शुद्ध-पवित्र हों)

अन्न संस्कार - माँ को खिलाई गई खीर के बाद शिशु को पुनः खीर खिलाकर सात्विकता, पौष्टिकता, मधुरता का समावेश करना। खीर के साथ घृत, मधु, तुलसीदल तथा गंगाजल का सम्मिश्रण। घृत-स्नेह, मधु-अमृतत्व, तुलसीदल दोष निवारण, गंगाजल देवत्व का संवर्धन ।

अन्न प्राशन- 'आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः' के अनुसार अन्तःकरण की पवित्रता के लिए संस्कारित अन्न।

जैसा खाये अन्न-वैसा बने मन, जैसा पिये पानी-वैसा बने बानी।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः । [10]

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् । [11]

अन्न-जीविका के साधन को देवार्पण करके ग्रहण करना। स्वाद के स्थान पर स्वास्थ्य का ध्यान रखना ही इस संस्कार का मूल उद्देश्य है। संस्कारित आहार से समग्र व्यक्तित्व का समुचित विकास सम्भव है।

षण्मासं चैनमन्नं प्राशयेत्लघुहितं च । सुश्रुत

छठे महीने से शिशु को हितकारी और सुपाच्य अन्न देने का विधान। लगभग इसी समय दाँतों का निकलना। ठोस आहार की आवश्यकता का संकेत । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः । [12] जीवन में यज्ञीय अन्न (आहार) हो ग्रहण करने का शास्त्रों में निर्देश मिलता है। शुभारम्भ यज्ञीय वातावरण में अन्नप्राशन संस्कार से होता है। जैसा खाये अन्न वैसा बने मन। आहार से स्थूल शरीर को आवश्यक ऊर्जा के साथ ही मन को विचार भी मिलते हैं। अतः वह पौष्टिक एवं सुपाच्य होने के साथ-साथ ईमानदारी से परिश्रमपूर्वक अर्जित किया हुआ तथा सुसंस्कारी भी हो। आहार रसोई बनाने वाले के विचारों एवं भावों से भी प्रभावित होता है। अतः यज्ञीय भाव से भगवान् के लिए नैवेद्य रूप में

ही उसका निर्माण हो। मन अर्थात् विचारों से ही जीवन की गतिविधियों का निर्धारण है। अन्नप्राशन संस्कार से जीवन निर्माण की दिशा में परिवार के सदस्यों का मार्मिक प्रशिक्षण होता है।

जैसा खाते अन्न हैं, वैसा बनता मन। सात्विक, पौष्टिक खीर से, होता अन्न अशन ॥ अन-प्राशन संस्कार यह, देता है निर्देश। अपने श्रम का खाइये, अन्न यही संदेश ॥

मुण्डन (चूड़ाकरण)-संस्कार

प्रस्तावना

संस्कार का उद्देश्य अवांछनीयता को दूर करके वांछनीय तत्वों का विकास करना है। मुण्डन में विकारों के प्रतीक बालों का मुण्डन, नये बालों-विचारों का विकास। पूर्व योनियों (साँप, कुत्ता, लोमड़ी, लकड़बग्घे) के कुसंस्कारों को समाप्त करना। मुण्डन संस्कार किसी देवस्थल एवं तीर्थ आदि में अथवा घर पर दिव्य वातावरण बना कर किया जाना। जिससे श्रेष्ठ संस्कारों के संवर्धन में सहायता मिल सके।

काल (अवधि)

पहले वर्ष, तीसरे वर्ष अथवा पाँचवें वर्ष में तो मुण्डन अवश्य ही करा लेना चाहिए।

प्रमुख क्रम

मस्तक लेपन गो दुग्ध, घृत, दही आदि मिलाकर बालों पर लेपन करना, इससे स्निग्धता का संवर्धन, कुसंस्कारों को स्नेहपूर्वक निष्कासित करना। गोद्रव्य से सात्विकता, स्निग्धता का संवर्धन करके व्यक्ति

को ऊँचा उठाना का भाव होना चाहिए।

त्रिशिखा बन्धन एवं कर्त्तन- मनुष्य का मस्तिष्क अगणित सामर्थ्य से भरपूर, उसमें 3 केन्द्र अ. निर्माण परक, ब. पोषण परक स. नियन्त्रण परक, ये ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र से सम्बद्ध है। इनकी प्रेरणाओं को बालों से बाँधना और इन प्रेरणाओं के क्रियान्वयन में बाधक तत्वों का कर्त्तन करना है।

छुरा पूजन - साधन भी पूजनीय, छुरे की तीक्ष्णता पूजनीयता श्रेष्ठता का आधार, काँटे से काँटे को निकालने की

तरह तीक्ष्ण-पैने, छुरे से कुसंस्कारों के प्रतीक बालों का मुण्डन करना संभव है।

नवीन वस्त्र पूजन - नया कलेवर धारण करना, पुराना उतारकर नवीन वस्त्रों को धारण करना चाहिए।

स्वस्तिक लेखन - मस्तिष्क के विचार अपने तथा दूसरों के लिए कल्याणकारी होने चाहिए।

उपसंहार

शरीर-यन्त्र का सुसंचालन मस्तिष्क इंजन से सम्भव। मस्तिष्क की श्रेष्ठता श्रेष्ठ विचारों से और श्रेष्ठ विचारों के मूल में मुण्डन संस्कार की अहम् भूमिका है। अतः बच्चों के बाल संस्कारपूर्वक ही कटाना प्रारम्भ करें।

चूड़ाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः। अर्थात् मुण्डन सभी द्विजातियों के लिए आवश्यक धर्मकृत्य है। गर्भ से आने वाले बालों को प्रथम बार यज्ञीय वातावरण में साफ करने की प्रक्रिया का नाम मुण्डन संस्कार है। जीवात्मा के साथ जन्म-जन्मान्तरों से चली आने वाली हीन पशु प्रवृत्तियों का निवारण। मानवीय गौरव गरिमा के अनुरूप देव वृत्तियों के बीजारोपण का प्रतीक शिखा की स्थापना करना है। इस कार्य में दिव्य चेतन धाराओं का भी सहयोग मिले। अतः देवस्थलों पर ही यह संस्कार कराने की परम्परा है। बालक के मस्तिष्कीय

(बौद्धिक) विकास एवं सुरक्षा के सम्बन्ध में अभिभावकों का मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण। गो-रस कर्मकाण्ड के अन्तर्गत दुग्ध-दधि से मस्तक लेपन अर्थात् अवांछनीयताओं के निवारण में स्नेह की अधिकता होनी चाहिए। त्रिशिखा बन्धन अर्थात् मस्तिष्क की सृजन, पोषण, परिवर्तन रूपी तीनों शक्ति धाराओं की आवश्यकता का नियन्त्रण करना है। उपनयन, संन्यास, मरणोत्तर आदि संस्कारों, तीर्थयात्रा एवं अन्य अवसरों पर कराये जाने वाले मुण्डन का तात्पर्य जीवन क्रम के प्रचलित ढर्रे को बदल डालने का वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रयोग है।

बालक के मस्तिष्क का हो बहुमुखी विकास। है मुण्डन, संस्कार के द्वारा यही प्रयास ॥ उन्मूलन दुष्प्रवृत्ति का है मुण्डन की सिद्धि। और शिखा स्थापना सत्प्रवृत्ति और समृद्धि ॥

विद्यारम्भ-संस्कार

प्रस्तावना

शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ मानसिक आवश्यकताओं (शिक्षा विद्या) की पूर्ति भी आवश्यक। शिक्षा ही नहीं विद्या भी।

काल एवं महत्ता

पाँच वर्ष की आयु। शैक्षिक संस्कार में प्रथम। नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते । [13]

संस्कार क्रम

गणेश पूजन - विद्या-विवेक के प्रतिनिधि, देवों में प्रथम पूज्य अपने विवेक से, शिशु भी समाज में विवेक के आधार पर अग्रणी बन सकता। सरस्वती पूजन- शिक्षा, कला एवं संवेदना की अधिष्ठात्री देवी, शिक्षा और बुद्धि का दुरुपयोग न होने पाए। माँ की तरह विद्या-शिक्षा की माँ सरस्वती की कृपा भी आजीवन आवश्यक है।

उपकरण पूजन - पवित्र श्रेष्ठ साधन से श्रेष्ठ लक्ष्य साध्य की उत्कृष्टता स्थापित हो सकती है। यह प्रयोग केवल विद्या के क्षेत्र में नहीं, हर क्षेत्र में आवश्यक है। इसके तीन उपकरण हैं लेखनी, दावात, पट्टी स्लेट एवं काँपी। लेखनी- लिखने का आधार। अभिरुचि विकसित करके सुलेखन का अभ्यास किया जाए। दावात - लिखने के प्रधान साधनों में स्याही का प्रमुख स्थान, उसे रखने की पात्रता अर्थात् दावात। एकाग्रतापूर्वक इस पात्र का रख-रखाव और सदुपयोग की प्रेरणा ग्रहण की जाय। पट्टी लिखने का आधार फलक पट्टी या कागज आदि। श्रमशीलता को विकसित करके पट्टी, पुस्तक, काँपी आदि की साज-सँभाल का ध्यान रखना। गुरुपूजन - गुरु-शिक्षक के बिना, ज्ञान-शिक्षण सम्भव नहीं। गुरु के प्रति श्रद्धा भावना का विकास आवश्यक, तद्विद्विप्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। अक्षर लेखन-पूजन- जो कुछ लिखा जाय, पूजनीय स्तर का हो सके। जीवन में विद्या की महत्ता, विद्या के बिना शिक्षा अधूरी, दोनों मिलकर व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करते हैं।

प्राप्तेऽथ पंचमे वर्षे विद्यारम्भं तु कारयेत्। बालक का विद्यारम्भ संस्कार पाँचवें वर्ष तक कर देना चाहिए। अक्षर ज्ञान से अक्षर ब्रह्म की ओर जीवन यात्रा का शुभारम्भ। दिव्य बौद्धिक क्षमताओं के जागरण एवं विकास का क्रम यही से प्रारंभ होता है। शिक्षा-सांसारिक जानकारी का जीवन-निर्मात्री (अध्यात्म) विद्या के रूप

में विकास हो, इस हेतु भावनात्मक पृष्ठभूमि का निर्माण। विद्या ही जीवन के चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की सिद्धि का मूल आधार। विद्ययाऽमृतमश्नुते। विद्या ही अमरता का साधन एवं मुक्ति का द्वार है। गणेश एवं सरस्वती का पूजन अर्थात् विवेक बुद्धि

के साथ कला-संवेदना के विकास की आवश्यकता है। उपकरण (लेखनी, दवात और पुस्तिका) पूजन का अर्थ इनकी अधिष्ठात्री शक्तियों (धृति, पुष्टि और तुष्टि) के रूप में अभिरुचि, एकाग्रता एवं श्रमशीलता जैसे गुणों का आवाहन-स्थापन। गुरु-शिष्य के मध्य श्रद्धा एवं वात्सल्य जैसे दिव्य भावों के विकास की कामना से गुरु पूजन। जीवन विकास के क्रम में बालक के प्रति माता-पिता के उत्तरदायित्वों का शिक्षण परमावश्यक है।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः। न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ [14] केवल शिक्षा ही नहीं, विद्या है अनिवार्य। शिक्षा से विद्या बिना सधते कब सत्कार्य ॥ विद्यारम्भ संस्कार से जमें ज्ञान के बीज। सद्गुरु से दीक्षा मिले, श्रेष्ठ बने ना चीज ॥

यज्ञोपवीत-संस्कार

प्रस्तावना

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते । [15] इसी संस्कार से दूसरा जन्म, इसके उपनयन, ब्रह्मसूत्र आदि नाम। भारतीय संस्कृति के दो प्रतीक-शिखा-सूत्र, सभी धार्मिक कार्यों में आवश्यक ।

काल (अवधि)

पहले 8 से 16 वर्ष, अब 12-15 वर्ष से 20-22 तक या जबी सुसंस्कारित जीवन की आकांक्षा-संकल्प जगे, तभी तभी यज्ञोपवीत संस्कार किया जा सकता है। प्रमुख क्रम- मेखला कोपीन ब्रह्मचर्य का पालन एवं प्रत्येक कार्य में जागरूकता, निरालस्यता एवं कर्तव्यपालन में कटिबद्धता। दण्डधारण - दुष्ट, आतताई और अधर्मियों के हौंसले पस्त करने के लिए। आत्मदण्ड के लिए भी, अपनी पशुता को दूर करने का संकल्प है। यज्ञोपवीत पूजन- गायत्री की सूत्रमय प्रतिमा, प्राण प्रतिष्ठा करके धारण करना चाहिए। पंचदेवावाहन-ब्रह्मा-आत्मबल-रचनात्मकता हेतु, विष्णु-समृद्धि-पोषणता हेतु, महेश-व्यवस्था नियन्त्रण हेतु, यज्ञ-परमार्थ भावना, सूर्य पराक्रम-निरन्तरता आदि।

यज्ञोपवीत धारण - आदर्शवादिता को धारण करना। इसे सह-जरूप में धारण करें। मनुष्य में मनुष्यता के विकास हेतु यह संस्कार आवश्यक है। सूर्यदर्शन- सूर्य की फिलॉसफी अपनाना तेजस्विता गतिशीलता। उष्णता (तप) धारण करना, लोकहित के लिए समर्पित रहना। त्रिपदा पूजन- गायत्री त्रिपदा हैं-यज्ञोपवीत में तीन लड़ें हैं। गायत्री, सरस्वती, सावित्री-तीन शक्तिधाराएँ शास्त्रों में कही गयी हैं। दीक्षा गुरुपूजन धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि बनकर ईश्वरीय चेतना का बोध कराता है, ज्ञान का आलोक प्रदान करता है। मन्त्र दीक्षा-छन्द को अपने तप, पुण्य और प्राण से युक्त करके मन्त्र बनाकर शिष्य के अन्तःकरण में प्रतिष्ठित कर देता है। सिंचन-अभिषेक- गुरु के बोये प्राण-बीज को सिंचित करके अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित होने की स्थिति प्रदान की जाती है।

वेद पूजन-अध्ययन - शाश्वत ज्ञान-वेद का सम्मान और स्वाध्याय का व्रत लेना चाहिए।

वैश्वानर नमस्कार - परमात्मा के प्रतिरूप अग्निदेव का नमन-वन्दन करना चाहिए।

गुरु दीक्षा-संकल्प - जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए न्यूनतम एक दोष छोड़ने तथा एक सगुण अपनाने की गुरु दक्षिणा प्रदान करना चाहिए। जीवन में गिव एण्ड टेक का सन्देश अपना चाहिए।

दीक्षा संस्कार - दीयते ज्ञानमत्यन्तं, क्षीयते पापसञ्चयः। तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता, मुनिभिस्तत्त्व दर्शिभिः ॥

संचित पापों का नाश करके ज्ञान का अनुदान प्रदान करने वाली प्रक्रिया का नाम-दीक्षा संस्कार है। जीवन विद्या के क्षेत्र में दक्षता प्राप्त करने के उद्देश्य से मार्गदर्शक की नियुक्ति ही दीक्षा संस्कार है। दीक्षा

मात्र सामान्य कर्मकाण्ड नहीं, एक सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रयोग है। गुरु के प्राण, तपः, पुण्य एवं ज्ञान के अंश को शिष्य के जीवन

में स्थापना करना है। गुरु रूपी समर्थ सत्ता के प्रति शिष्य का सर्व-तोभावेन समर्पण करना है। शिष्य रूपी सामान्य पौधे के साथ गुरु रूपी विशेष पौधे की कलम बाँधना। गुरु से प्राप्त अनुदानों को धारण करने एवं पचाने की क्षमता अर्थात् पात्रता का विकास करना है। पात्रता के विकास हेतु गुरु दक्षिणा का विधान है। दक्षिणा का निर्धारण गुरु द्वारा शिष्य की योग्यता एवं दक्षता के अनुरूप ही है। परम पूज्य गुरुदेव एवं वन्दनीया माता जी द्वारा निर्धारित गुरु दक्षिणा के 5 अनुशासन कहे गये हैं- 1. गायत्री महामन्त्र की नियमित उपासना। 2. पूज्य गुरुदेव द्वारा लिखित युग साहित्य एवं अखण्ड ज्योति अथवा अन्य सहयोगी पत्रिकाओं का नित्य स्वाध्याय करना चाहिए। 3. जीवन के दोष-दुर्गुणों का क्रमशः संकल्प पूर्वक छोड़ने का प्रयास करना चाहिए। 4. सत्प्रवृत्ति संवर्धन-दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन के निमित्त समयदान। 5. इस अभियान को गति देने के लिए अपने साधनों का नियोजन अर्थात् अंशदान देना चाहिए। गुरु के सत्संकल्प की पूर्ति हेतु शिष्य का पुरुषार्थ नियोजित हो तभी दीक्षा की सार्थकता है।

दीक्षा लेता शिष्य जब गुरु देता अनुदान। संचित पाप विनष्ट कर भर देता निज ज्ञान ॥ अपने तप के अंश से गुरु सोंचे निज शिष्य। प्राण पिलाकर मातृवत् निर्मित करे भविष्य ॥

मातुरगे ऽधिजननं द्वितीयं मौज्जिबन्धनम्। अर्थात् एक जन्म माता के गर्भ से और दूसरा जन्म यज्ञोपवीत

धारण से। संस्काराद् द्विज उच्यते। संस्कार से ही मनुष्य द्विज कहलाता है, यज्ञोपवीत-द्विजत्व का प्रतीक है। उपनयन, व्रतबन्धन, मौज्जिबन्धन आदि रूपों में प्रचलित संस्कार ही यज्ञोपवीत है। सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन के संकल्प का प्रतीक। मानवीय गरिमा के अनुरूप आदर्शवादी परमार्थ परायण जीवन जीने का संकल्प समारोह। यज्ञोपवीत एक सूत्र। सूत्र अर्थात् सूत का बना नौ धागों का एक प्रतीक। यज्ञ अथवा गायत्री की मूर्ति-मान् प्रतिमा है। सूत्र अर्थात् फार्मूला नौ गुणों से समन्वित जीवन जीने का ऋषिप्रणीत फार्मूला। ये गुण हैं- 1. समझदारी, 2. ईमानदारी, 3. जिम्मेदारी, 4. बहादुरी, 5. श्रमशीलता, 6. मितव्ययिता, 7. शिष्टता, 8. सुव्यवस्था, 9. सहकारिता। व्रतशील ब्रह्मनिष्ठ जीवन जीने वाले लोकसेवियों के प्रभाव से ही भारत भूमि को स्वर्गादपि गरीयसी देवभूमि तथा भारतीय संस्कृति को विश्वसंस्कृति देवसंस्कृति का गौरव प्राप्त है।

देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान अर्थात् गौरवशाली अतीत की पुनरावृत्ति है।

यज्ञोपवीत संस्कार है दायित्वों का ज्ञान। ब्रह्मा विष्णु महेशवत् जन-जन का कल्याण। सविता की तेजस्विता, सद्गुरु की तप-सिद्धि। पाकर हम करते रहें, श्रेष्ठ गुणों में वृद्धि ॥

विवाह-संस्कार

प्रस्तावना

मनुष्य के जीवन अर्थात् व्यक्तित्व में कुछ विशेषताएँ, कुछ न्यूनताएँ होती हैं। जीवन की पूर्णता के लिए स्त्री-पुरुष का एक साथ एकजुट होकर एक-एक मिलकर ग्यारह बनकर कार्य करना चाहिए। दो व्यक्तियों अर्थात् स्त्री-पुरुष का एक लक्ष्य के लिए समर्पित होकर जीवनयापन करना ही विवाह संस्कार है। वि अर्थात् वह (वहन करना) - विवाह, विशेष उत्तरदायित्वों को वहन करना है, कोई कौतुक नहीं है। गृहस्थ एक तपोवन है, जिसमें संयम, सेवा और सहिष्णुता की साधना करना पड़ती है। - पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य

काल (अवधि)

गृहस्थ के सुसंचालन योग्य होने पर, अपने पैरों पर पूरी तरह खड़े होने पर, न्यूनतम 18-21 वर्ष।

प्रमुख क्रम

विवाह घोषणा- दाम्पत्य जीवन में प्रवेश की घोषणा सार्वजनिक रूप से देवशक्तियों, यज्ञाग्नि एवं घरातियों-बरातियों के सम्मुख होनी चाहिए। हस्तपीत करण - कन्या की हथेली में हरिद्रालेपन मांगलिक। गृहलक्ष्मी का गौरव एवं नई जिम्मेदारी संभालने के लिए हाथ मजबूत करना है।

कन्यादान-गुप्तदान - कन्या के उत्तरदायित्वों का दान। जो कुछ दिया जाय, उसे गुप्तरूप से प्रदर्शन नहीं, प्रदर्शन ने ही दहेज का दानव खड़ा किया है। पाणिग्रहण - वर-कन्या एक-दूसरे की जिम्मेदारी उठाते हैं, मित्र की तरह एक दूसरे को सहारा देते हैं, हाथ पकड़ते हैं। ग्रन्थि-बन्धन - वर-कन्या का एक सूत्र में आबद्ध होना। पुष्प, दूर्वा,

हरिद्रा, अक्षत, पैसा- इन पाँचों पदार्थों को गाँठ में बाँध देते हैं तथा इसके शिक्षण को जीवन में अपनाने की प्रतिज्ञा करते हैं।

वर-वधू की प्रतिज्ञाएँ - आदर्श गृहस्थ के नियमों को स्वीकार करना तथा जीवन भर अपना।

लाजा होम-भाँवर - 4+3 बार यज्ञाग्नि के चारों ओर घूमना, कन्या के भाई द्वारा लाजा बहिन को, बहिन द्वारा पति को दिया जाना तथा पति का हवन करना अर्थात् उस धन (द्रव्य) को समाज के लिए समर्पित करना है। सप्तपदी - अन्न, बल, धन, सुख, प्रजपालन, ऋतु के अनुसार व्यवहार एवं मित्रता वृद्धि के लिए एक साथ कदम बढ़ाना। दोनों का साथ-साथ प्रयत्न करना चाहिए। आसन परिवर्तन पत्नी का वाम अङ्ग में बैठना, एक-दूसरे को सम्मान देते हुए अपना आसन प्रदान करना। सुमंगली-सिन्दूरदान एवं मंगल तिलक वर द्वारा कन्या की माँग में अनुराग प्रेम के प्रतीक रूप में सिन्दूर लगाना, कन्या द्वारा पति के माथे पर तिलक लगाना। आशीर्वाद-उपस्थित जनसमूह द्वारा पुष्पों की वर्षा करके आदर्श दाम्पत्य जीवन की प्राप्ति के लिए आशीर्वाद प्रतिदिन कुशल वरकन्ययोः के भाव के साथ देना चाहिए।

विशिष्ट वहन इति विवाहः। अर्थात् विशिष्टता विशिष्ट उत्तरदायित्वों को धारण करने का नाम विवाह संस्कार है। नर-नारी द्वारा एक दूसरे के प्रति अपनी विशिष्टताओं का समर्पण करते हैं। यह संस्कार दो आत्माओं का पवित्र मिलन है। एक सम्मिलित नवीन इकाई का निर्माण करना है। एक नये परिवार, नये समाज, नये राष्ट्र का निर्माण। परिवार एक छोटा राष्ट्र है तथा राष्ट्र एक बड़ा परिवार है। यह आदर्श समाज की स्थापना का मूल आधार है।

विवाह मात्र एक सामाजिक समझौता नहीं; अपितु जन्म-जन्मान्तर्गत तक साथ निभाने का शपथ समारोह। देवशक्तियों, यज्ञाग्नि, सम्बन्धियों, इष्ट मित्रों की साक्षी में सात परिक्रमाओं, सात कदमों के माध्यम से लिए गये संकल्प ही गृहस्थ जीवन का आधार है।

चतुर्णामाश्रमाणाञ्च गृहस्थस्तु विशिष्यते- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वान-प्रस्थ एवं संन्यास- इन चारों आश्रमों

में गृहस्थ आश्रम हो सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है। गृहस्थ हो यज्ञ और तप का आधार कहा गया है। विवाह शारीरिक सौन्दर्य और धन की अपेक्षा गुण, कर्म और स्वभाव की उत्कृष्टता अधिक महत्वपूर्ण है। अहंकार पाकर धन का प्रदर्शन, धूमधाम से भरपूर समारोह नहीं; अपितु यज्ञीय वातावरण में सम्पन्न संस्कार ही सराहनीय होना चाहिए। वर सत्कार अर्थात् श्रेष्ठता ही सम्माननीय है। वरमाला का अर्थ जीवनसाथी के वरण चुनाव की स्वीकृति है। कन्यादान अर्थात् कन्या के प्रति उत्तरदायित्वों का हस्तान्तरण करना है। यज्ञाग्नि की परिक्रमा अर्थात् यज्ञीय अनुशासन में ही भावी जीवन की गतिविधियों का नि-

र्धारण करना चाहिए। गृहस्थ एक तपोवन है, जिसमें संयम, सेवा और सहिष्णुता की साधना करनी पड़ती है। - पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य दो आत्मा की एकता है विवाह संस्कार। धन्धा नहीं दहेज का, जीवन भर सहकार ॥ सद्गृहस्थ के नियम का करें सदा सम्मान। और राष्ट्र को दे सकें, श्रेष्ठ-गुणी सन्तान ॥

वानप्रस्थ-संस्कार

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता वर्णाश्रम धर्म के परिपालनपूर्वक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति। जीवन के उत्तरार्द्ध में पारिवारिक जिम्मेदारी पूरी होने पर वानप्रस्थ द्वारा विश्व उद्यान की सेवा करना चाहिए। वानप्रस्थ धर्म संस्कृति का प्राण धर्म और संस्कृति का अपने जीवन में पालन तथा समाज में प्रचार करना है। प्राचीनकाल में लोक निर्माण की सारी गतिविधियाँ साधु, ब्राह्मण और वानप्रस्थों पर निर्भर थीं। वर्तमान में साधु-ब्राह्मण अपने दायित्व से विमुख हुए, वानप्रस्थी रहे नहीं। अतएव इस परम्परा के पुनर्जागरण द्वारा पूज्य गुरुदेव पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य ने समाज का कार्याकल्प करने का संकल्प किया है। वरिष्ठ और कनिष्ठ वानप्रस्थी बन सकते हैं।

काल (अवधि)

पूर्व समय में 50 वर्ष और अब वर्तमान समय में बच्चों की जिम्मेदारी से मुक्त होते ही यह संस्कार

करा सकते हैं। प्रमुख क्रम- संकल्प अपना जीवन सम्पूर्ण समाज का मानकर लोकसेवा के लिए समर्पित होने का संकल्प करना चाहिए। यज्ञोपवीत परिवर्तन- नए संकल्प की पूर्ति के लिए नए यज्ञोपवीत को धारण करना। त्याग, पवित्रता, परमार्थ और तेजस्विता के प्रतीक व्रत-बन्ध स्वरूप यज्ञोपवीत का नवीनीकरण करना चाहिए। पंचगव्यपान - गाय का दूध, दही, घी, मूत्र, गोमय और कुशोदक-इन्हें मिलाकर अब तक की हुई भूलों-दोषों के प्रायश्चित्त के रूप में पान करना। पंचगव्य - गोमूत्र, गोमय और कुशोदक- दोष निष्कासनात्मक, गो दुग्ध, दधि, घृत गुणवर्धनार्थक हैं। मेखला-कोपीन दण्ड धारण - ब्रह्मचर्य पालन (इन्द्रिय संयम), मुस्तैदी, सतर्कता, तत्परता को महत्त्व देना तथा धर्मदण्ड-धर्मधारण का प्रतीक-सामाजिक एवं स्वयं की बुराइयों से लड़ते रहने के लिए है। पीतवस्त्र धारण वीरों, त्यागियों, परमार्थपरायणों का बाना है। संस्कृति की प्रतिष्ठा उसके सनातन गौरव की रक्षा करने के हेतु है। ऋषि पूजन ऋषियों के कार्यों, उनकी परम्परा का अभिनन्दन तथा स्वयं को उसी मार्ग पर ले चलने का संकल्प करना है। वेदपूजन ज्ञान के प्रतीक ग्रन्थ का पूजन। अज्ञान हजारों दुःखों का कारण, उसका निवारण ज्ञान द्वारा ही संभव है, अपने तथा समाज-यह दोनों के लिए आवश्यक है। यज्ञपुरुष पूजन- यज्ञ देवत्व का आधार, देवशक्तियों का पोषक, परमार्थ परायणता आदि गुणों को धारण करना, समाज में इन्हें प्रतिष्ठित करना है। व्रतधारण- व्रतशील जीवन ही उत्कृष्टता की चरम सीमा तक पहुँच सकता है और अन्यो को भी पहुँचा सकता है। प्रव्रज्या वानप्रस्थ परिव्राजक समाज में सतत गतिशील रहकर दायित्वों की पूर्ति करता है। उसका एक ही सूत्र है- चरैवेति चरैवेति। [16] उपसंहार- वानप्रस्थ सामाजिक समरसता का मेरुदण्ड है। समाज को श्रेष्ठ और समुन्नत बनाने हेतु इस परम्परा का पुनरावर्तन आवश्यक है।

वाने वनसमूहे प्रतिष्ठिते इति वानप्रस्थः। अर्थात् गृहस्थ जीवन के दायित्व पूर्ण करके वन की ओर प्रस्थान करने तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने का संकल्प है। समाज ऋण से मुक्ति का प्रयास। मोह-ममता को परिवार की ओर से शिथिल कर समाज की ओर उसका विकास। युवावस्था के कुसंस्कारों का शमन प्रायश्चित्त।

भारतीय धर्म-संस्कृति का प्राण। जनमानस का परिष्कार कर लोक कल्याणकारी प्रवृत्तियों के संचालन का दायित्व वहन करना है। विश्व मानवता के कल्याण की योजनाओं का निर्धारण एवं संचालन। इसी आधार पर भारत को देवभूमि एवं विश्वगुरु का सम्मान तथा भारतीय देव संस्कृति को विश्व संस्कृति की मान्यता देना है। वानप्रस्थ परम्परा का नवीन संस्करण, देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के सृजन सेनानी है।

सद्गृहस्थ व्रत पूर्ण कर, पारिवारिक दायित्व । वानप्रस्थ संस्कार का, भूलें नहीं महत्त्व ॥ ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर अपने सारे भार। जन-सेवी जीवन जियें, ब्राह्मण-सा आचार ॥

अन्त्येष्टि-संस्कार

प्रस्तावना

अन्त्येष्टि शरीर का अन्तिम संस्कार है। भारतीय संस्कृति यज्ञीय संस्कृति जीवन का प्रारम्भ यज्ञ से और समापन भी यज्ञ से होता। मृतक के स्वजनों को शोक होना स्वाभाविक, उसे यज्ञ तथा अन्य कर्मकाण्ड में लगा देना। अग्नि संस्कार करना, ऋषियों की दूरदर्शी सोच, अन्यथा यूरोपीय देशों की तरह 'शव' रखने के लिए बड़े-बड़े स्थान बनाने पड़ते हैं। अन्त्येष्टि संस्कार जीवन की अगली यात्रा के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

प्रमुख क्रम

पिण्डदान- जीवात्मा की शान्ति के लिए, जीव चेतना की तुष्टि के लिए मृतक के हिस्से के साधनों को अर्पित करना। पाँच पिण्ड दिए जाते हैं- (क) घर के अन्दर, (ख) घर के बाहर, (ग) मार्ग के चौराहे पर, (घ) श्मशान में पहुँचकर एवं ड. चितारोहण के बाद। भूमि संस्कार- अग्नि संस्कार के स्थान को साफ-सुथरा करके, पानी से सिंचित करके यज्ञ करने लायक बनाना। उस भूमि पर ॐ लिखना, परमात्म चेतना के साथ जीवात्म चेतना का तारतम्य बिठाने का भाव रखना। समि-धारोपण - चारों दिशाओं में समिधाएँ चिनना जीवन की अगली यात्रा भी चारों ओर से मर्यादापूर्ण रहे। चार मर्यादाएँ- धन, काम, यश और द्वेषपरक हैं, इन्हें नियन्त्रित करके जीवन की उच्चावस्था तक पहुँचा जा सकता है। शरीर यज्ञ- मानव जीवन यज्ञ से विनिर्मित होता है, यज्ञ से विद्यमान रहता है और यज्ञीय प्रक्रियानुसार अपने-अपने मूल रूप में समाहित हो जाता है। मृतक को अगला

जीवन मिले, तो यही यज्ञीय ऊर्जा से ओत-प्रोत शरीर के घटक पञ्चभूत-पुनः यज्ञीय भावना से भरकर जीवन को सार्थकता प्रदान करें। सामूहिक जप-प्रार्थना- समष्टि मन से की गयी प्रार्थना की ऊर्जा से अभीष्ट यात्रा और उसके लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है। पूर्णाहुति कपाल क्रिया- जीवन की पूर्णता, कपाल मस्तिष्क को व्यापकता प्रदान करना है। पूर्णता के दर्शन का समुत्थित लोगों को बोध कराना है। अस्थि विसर्जन अग्निसंस्कार के तीसरे दिन अस्थि चयन और उसी दिन या कभी सुविधानुसार किसी पवित्र नदी-सरोवर में विसर्जन करना चाहिए। जीवन का कण-कण सार्थक हो, इस भाव से अवशेष पुण्य क्षेत्र में विसर्जित किया जाता है। मृतात्मा को अपने शरीर और अपनों से मोह-ममता की अपेक्षा होती ही है, शरीर का अवशेष पुण्य क्षेत्र में डालने से उसे तृप्ति मिलती है और अपनों द्वारा मरणोत्तर कृत्य किये जाने से तुष्ट होती है। अन्त्येष्टि अन्त्येष्टि। यज्ञीय प्रक्रिया से प्राप्त जीवन का शरीर का यज्ञीय प्रक्रिया में विसर्जन। जीवन की पूर्णता यज्ञ से ही संभव है। प्रकृति द्वारा पञ्चतत्त्व द्वारा प्राप्त शरीर को पञ्चतत्त्व में विलय करना है। खाली हाथ आना खाली हाथ जाना। मनुष्य के साथ उसका सत्कर्म-पुण्यकर्म ही जाता है। युग-युग तक जग याद करे, तुम

ऐसे कर्म करो। कर्म में ऐसे मर्म भरो। जीवन की अगली यात्रा के लिए शक्ति और प्रेरणा प्रदान करना चाहिए।

पञ्चभूत से प्राण का निष्कासन है मृत्यु। यह परिवर्तन की तरह है साधारण कृत्य ॥ मुट्ठी भर ही भस्म है, इस तन का परिणाम। श्रेष्ठ योनि देते हमें किये गये शुभ काम ॥

मरणोत्तर-संस्कार

प्रस्तावना

मृत्यु के साथ जीवन का समापन नहीं, वह अनन्त जीवन श्रृंखला की एक कड़ी है। मृत्यु के तेरहवें दिन यह संस्कार होता है। श्रद्धापूर्वक शास्त्रीय विधि-व्यवस्था के साथ किया गया पितरों के निमित्त कृत्य 'श्राद्ध' कहा जाता है। जिन कार्यों अथवा विशिष्ट प्रक्रिया से पितरों की अन्तरात्मा तृप्ति-तुष्टि प्राप्त करती है, उसे तर्पण कहते हैं।

काल (अवधि)

अगला जीवन अधिक सुसंस्कारवान् बने। मृत्यु के दसवें दिन शुद्धि, प्रक्रिया, सफाई, पुताई, धुलाई के बाद तेरहवें दिन मरणोत्तर संस्कार करना चाहिए। मृतक श्राद्ध के अतिरिक्त पितृपक्ष में अथवा देहावसान दिवस पर भी श्राद्ध किया जा सकता है। वर्तमान परिस्थितियों में जो लोग तेरह दिन का समय न लगा सकें, वे तीन दिन में ही शुद्धि प्रक्रिया सम्पन्न करके मरणोत्तर संस्कार कर सकते हैं। प्रमुख क्रम यमदेवता पूजन सृष्टि का नियन्त्रण मृत्यु द्वारा होता है। मृत्यु के देवता 'यम' का पूजन-उनकी सत्ता को स्वीकारना, उनकी अनुकूलता प्राप्त करना। अपने जीवन में नियन्त्रणात्मक शक्ति प्राप्त करना। पितृ-आवाहन पूजन- पितरों के अनुदानों से ही आज का हमारा जीवन है, उनके सहयोग अनुदान का श्रद्धासिक्त हृदय से पूजा वेदी पर स्थित दीपक के प्रकाश रूप में आवाहन करना चाहिए।

तर्पण - स्वर्गस्थ आत्माओं की तृप्ति पदार्थों से नहीं; अपितु श्रद्धा-भावना की अतिशयता से होती है, पदार्थ तो मात्र प्रतीक होते हैं। सूक्ष्म शरीरधारी पितर शुभ कर्मों की सुगन्ध का रसास्वादन लेते हैं। प्रतीक रूप भोजन जल के सूक्ष्म अंश को ही वे ग्रहण कर सन्तुष्ट होते हैं। * तर्पण में जल, दूध, जौ, तिल, चावल प्रयुक्त होता है, जल-प्यास को, दूध- सात्विकता को, जौ ऋषित्व भाव को, तिल स्निग्धता को, चावल पौष्टिकता को बढ़ाने वाला है। इन सभी पदार्थों का सूक्ष्म अंश पितर पाकर तृप्ति का अनुभव करते हैं। * तर्पण का यह क्रम देवताओं, ऋषियों, दिव्य मनुष्यों, दिव्य पितरों, यम देवता, मनुष्य-पितरों के निमित्त सम्पन्न किया जाता है। भीष्म तर्पण - परमार्थ परायण महामानव- जिन्होंने अपना वंश नहीं चलाया, उन्हें जलदान अवश्य दिया जाना। पितृयज्ञ - पितरों को उनकी कमाई का अवशेष अंश समर्पित करके उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन किया जाता है। उसी का प्रतीक पिण्ड है। जौ गेहूँ के आटे में तिल, शहद, घृत, जौ, दूध मिलाकर पिण्ड बनाया जाता है। भूतयज्ञ-पंचबलि गौ, श्वान,

काक, देव, पिपीलिकादि बलि का विधान है। असहायों क्षुद्र प्राणियों को भोज्य सामग्री देना चाहिए। उपसंहार - मनुष्य अपने ऊपर चढ़े पितृ ऋण से उद्धार होने के लिए श्राद्ध तर्पण-मरणोत्तर संस्कार अवश्य ही करें। इससे उपकारी के प्रति कृतज्ञता का भाव विकास संभव है, जिससे सभ्य शालीन समाज का संरचना हो सकेगी। मृत्यु के बाद भी जीवन का जीवात्मा का अस्तित्व। मृतात्मा को शान्ति सद्गति-तृप्ति-तुष्टि के लिए श्राद्ध तर्पण जरूरी है। श्रद्धा दीयते श्राद्धः। तृप्यते अनेन इति तर्पणः। पितरों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना। उनके कार्यों को आगे बढ़ाना। लोकहितकारी से उन्हें प्रसन्न करना चाहिए।

नहीं कर्मफल से बचा राव-रंक विद्वान। श्रद्धा सेवा बड़ों की श्राद्ध सुकर्म महान ॥ छोड़ी सम्पत्ति आ सके यदि समाज के काम। यह हो सच्चा श्राद्ध है अमर रहेगा नाम ॥

जन्मदिवसोत्सव-संस्कार

प्रस्तावना

सौभाग्य के क्षण, परमात्मा का अनुपम वरदान मानव जीवन की प्राप्ति, भगवान् राम और कृष्ण के जन्म जयन्ती से कम महत्वपूर्ण नहीं सामान्य मनुष्य का जन्मदिन है। आत्मचिन्तन आत्मबोध का अवसर बुद्ध, वाल्मीकि, सूरदास, तुलसीदास, अंगुलिमाल का सामान्य जीवन-आत्मचिन्तन से महामानव बने, हम भी बन सकते हैं।

प्रमुख क्रम

पंचतत्त्व पूजन- शरीर का निर्माण पंचमहाभूतों से होता है। पूजन उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना है। पंच महाभूतों के सदुपयोग से स्वस्थ रहना सम्भव है। पृथ्वी अन्न का सही एवं उचित मात्रा में उपयोग करना चाहिए। जल- स्वच्छता-सफाई का उचित उपयोग करना चाहिए। वायु स्वच्छ वायु सेवन, प्राणायाम, गन्दी वायु से बचाव करना। अग्नि- सूर्य ताप से घर, शरीर वस्त्र आदि के रोगाणु नष्ट करना, जठराग्नि बढ़ाये रहना। आकाश- शून्य आकाश में ईश्वर, विचार, शब्द, आदि भरे पड़े हैं, उनका समुचित उपयोग करना चाहिए। दीपदान - वर्ष के अनुसार दीपक, अगले वर्ष का बड़ा, दीपक। प्रत्येक वर्ष दीपकवत् प्रकाशवान् रहें। दीपक-ज्ञान का प्रतीक, उसे प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहा जाए। ऋतुम्भरा प्रज्ञा विकसित की जाए। व्रतधारण - व्रतों-सिद्धान्तों में बँधा व्यक्ति उच्च लक्ष्य तक पहुँचता है। एक दोष छोड़ने, एक सद्गुण अपनाने का संकल्प करना। उपसंहार-मानव जीवन की सार्थकता, जीवन का परम लक्ष्य इसी सिद्धान्त के अनुसार प्रति वर्ष जन्मदिन सही ढंग से मनाने से सम्भव है।

जीवन लक्ष्य के चिन्तन-मनन का शुभदिन। आत्मनिर्माण (आत्म-निरीक्षण, आत्मसमीक्षा, आत्मनिर्माण, आत्मविकास) की दिशा में संकल्पित होने का पर्व है। सावधान! कहीं जीवन का नन्हा क्षण भी निरर्थक न बीत जाए।

जन्मोत्सव करता सदा जीवन का संस्कार। जैसे दीपावली पर, हानि-लाभ का सार ॥ जन्मोत्सव पर त्यागते गत जीवन की भूल। अगले जीवन के लिए व्रत लेते अनुकूल ॥

विवाहदिवसोत्सव-संस्कार

प्रस्तावना

जन्मदिन व्यक्ति का धरती पर अवतरण, विवाह दिन व्यक्ति का परिवार में पदार्पण। आज विवाह संस्कार न होकर मात्र समारोह बनकर रह गये। समारोह में संस्कार खो गया है। विवाह संस्कार की उन प्रमुख बातों को जो पारिवारिक आदर्श की स्थापना में आवश्यक हैं, विवाह दिवसोत्सव में जोड़ दी गयी हैं। लाइसेंस रिन्यू कराने जैसा यह उपक्रम है। परिवार में पुनः उन्होंने वैवाहिक क्षणों का हर्षोल्लास भरकर जीवन को

और अधिक आनन्दमय एवं गतिशील बनाया जा सकता है। संकोच अनावश्यक दाम्पत्य जीवन में जिस समरसता, पारस्परिक स्नेह, विश्वास की आवश्यकता है, उसके लिए 'विवाह दिवस' मनाना नितान्त आवश्यक है; परन्तु इस कार्य में उतना ही संकोच बरता जाता है। अतः संकोच त्यागकर युगऋषि के नवनिर्माण अभियान में भागीदार बनकर अपना, अपने परिवार और अपने बच्चों का जीवन सुख-शान्तिमय एवं सुसंस्कारी बनने का अवसर प्रदान करें।

प्रमुख क्रम

ग्रन्थि बन्धन दूर्वा, पुष्प, अक्षत, हरिद्रा, पैसा बाँधकर ग्रन्थिबंधन किया गया था, आज पुनः उसी की स्मृति करके जीवन को उसी अनुशासन में चलाना है। पाणिग्रहण- पत्नी की जिम्मेदारी उठाने का संकल्प किया गया था, उसका निर्वाह आजीवन करना है, आज उसकी समीक्षा का दिन है। वर-वधू की प्रतिज्ञाएँ- प्रतिज्ञा पत्र को पुनः दुहराना, परस्पर चर्चा भी करना। सप्तपदी अन्न, बल, धन, सुख, प्रजापालन, ऋतु अनुकूल व्यवहार एवं मित्रता वृद्धि के सात कदम बढ़ाये गये थे, आज कितने कदम बढ़ रहे हैं। इस पर विचार करना चाहिए।

आश्वासन - सिर या कन्धे पर हाथ रखकर दोनों ने एक दूसरे को आश्वासन दिया था, आज कोई कमी तो नहीं आ रही है, विचार करें? एकीकरण- अपने-अपने व्यक्तित्व को एक दूसरे के साथ मिलाकर एक कर देना। दीपक की दो बत्तियों को मिलाकर एक किया जाता है। दोनों मिलकर ज्यादा प्रकाश फैलाते हैं। पुष्पोपहार-माल्यार्पण - एक दूसरे के गले का हार बनकर जीवन बिताएँ। पुष्प खिलकर अपनी प्रसन्नता सबको बाँटता है, तभी सबके प्रिय बने रहते हैं। अतः दोनों एक-दूसरे के साथ ऐसा ही व्यवहार करें। उपसंहार - व्यक्ति और समाज के बीच की कड़ी परिवार है। परिवार के श्रेष्ठ, सुन्दर, सुसंस्कारयुक्त बनाने के लिए पति-पत्नी के बीच स्नेह, सौहार्द, सद्ब्यवहार आवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए विवाह दिन मनाना नितान्त आवश्यक है, इससे उन सभी समस्याओं का समाधान हो जायेगा, जो पति-पत्नी के बीच मनमुटाव आदि कारण बनते हैं। प्रतिवर्ष इसकी पुनरावृत्ति से पारिवारिक कलह-क्लेश बचेगा, उसके स्थान पर परिवार में स्वर्गीय सुख-शान्ति, आनन्द का वातावरण बनेगा।

निष्कर्ष

यज्ञीय वातावरण में किया गया मार्गदर्शन व्यक्ति की अन्तः चेतना को प्रभावित करता है। इस प्रकार व्यक्ति एवं परिवार के प्रशिक्षण का आध्यात्मिक प्रयोग पूर्ण होता है। जिस प्रकार खदान से निकली हुई अनगढ़ व सामान्य तौबा, लोहा जैसी धातुओं को बड़े कारखाने (स्टील प्लांट) में संस्कारित करके सुघड़ एवं उपयोगी बनाया जाता है, जैसे लोहा जैसी सामान्य धातु के टुकड़े को आयुर्वेद के आचार्यों द्वारा गज-पुट, ताप, खरल आदि क्रियाओं द्वारा लौह भस्म के रूप में उपयोगी रस-रसायन बना दिया जाता है। उसी प्रकार हमारे ऋषियों ने संस्कार प्रक्रिया के माध्यम से मनुष्य के आत्मिक एवं भौतिक विकास का मार्ग प्रशस्त करके मानव को मानव, महामानव, देवमानव स्तर तक विकसित किया है। इस प्रकार पृथ्वी पर स्वर्ग की संकल्पना को साकार किया है। वर्तमान समय में पुनः वहीं होने जा रहा है। संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा दोषपनयनेन वा। सायण भाष्य

संस्कार परम्परा अर्थात् सत्प्रवृत्ति संवर्धन दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन। वर्तमान समय की यही माँग है, इन्हीं संस्कारों के आगमन से मनुष्य में देवत्व की स्थापना एवं धरती पर स्वर्गीय परिस्थितियाँ (खुशहाली) लायी जा सकती है।

COMPLIANCE Not required.

CONFLICT OF INTEREST None.

संदर्भ

- [1] कर्मकाण्ड भास्कर पृष्ठ संख्या 125, ब्रह्मवर्चस-शान्तिकुञ्ज हरिद्वार, उद्भूत-संस्कार प्रकाश।
- [2] जैमिनि सूत्र 3/1/3, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी।
- [3] तन्त्र वार्तिक, कुमारिल भट्ट कृत, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी।

- [4] कर्मकाण्ड भास्कर पृष्ठ संख्या 126, ब्रह्मवर्चस-शान्तिकुञ्ज हरिद्वार, उद्धृत-हारीत स्मृति।
- [5] कर्मकाण्ड भास्कर पृष्ठ संख्या 126, ब्रह्मवर्चस शान्तिकुञ्ज हरिद्वार, उद्धृत संस्कार प्रकाश।
- [6] व्यासस्मृति 1/13-14, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी (स्मृति संग्रह अंतर्गत प्रकाशित)।
- [7] मनुस्मृति 3/56, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- [8] तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली-सप्तम अनुवाक, गीता प्रेस गोरखपुर।
- [9] सुभाषित भाण्डागार, सम्पादक-नारायण राम आचार्य, निर्णय सागर प्रेस/मनोरंजन बुक डिपो, मुंबई।
- [10] श्रीमद्भगवद्गीता 3/13, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- [11] श्रीमद्भगवद्गीता 4/31, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- [12] ईशावास्योपनिषद् मन्त्र संख्या 1, 108 उपनिषद् ज्ञानखण्ड, ब्रह्मवर्चस-शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार।
- [13] श्रीमद्भगवद्गीता 4/38, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- [14] चाणक्यनीति 2/11, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- [15] स्कन्द पुराण, नागर खण्ड अध्याय 239 श्लोक 31-34, गीता प्रेस, गोरखपुर, एवं अत्रिस्मृति श्लोक 141, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी।
- [16] ऐतरेय ब्राह्मण 7/15, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी।